Research Paper E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 10 | ISSUE : 3 | MARCH 2024

अष्टछाप कवि (प्रथम पांच) : एक विवेचना

भैंरु लाल सेन [1]

[1] **सहायक आचार्य हिंदी विभाग, आचार्य श्री महाप्रज्ञ इंस्टीट्यूट ऑफ एक्सीलेंस आसींद , राजस्थान.**

ABSTRACT:

वल्लभ संप्रदाय के पुष्टिमार्ग में अनेक भक्त कवियों ने दीक्षित होकर कृष्ण भक्ति का प्रसार किया। वल्लभाचार्य द्वारा प्रवर्तित पुष्टिमार्ग उनके पुत्र गोसाई विठ्ठलनाथ के प्रयत्नों से विकसित हुआ। विठ्ठलनाथ ने सम्वत 1602 (सन्। 1565) में अपने पिता वल्लभाचार्य के 84 शिष्यों में से चार तथा अपने 252 शिष्यों में से चार को लेकर आठ प्रसिद्ध संगीतज्ञों की मंडली की स्थापना की जो अष्टछाप के नाम से प्रसिद्ध है। ये आठों भक्त कवि दिन के आठों पहर क्रम से कृष्ण भक्ति का गुणगान करते थे, आठ मुद्राओं में भक्ति करते थे।

KEYWORDS:

सूरदास, नंददास, कृष्णदास, परमानंद दास, कुंभनदास, चतुर्भजदास छीतस्वामी, गोविन्द दास।

PAPER ACCEPTED DATE:	PAPER PUBLISHED DATE:
29th March 2024	30th March 2024

विषय प्रवेश

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपनी पुस्तक में अष्ट छाप के कवियों का निम्न क्रम बताया है-

1. सूरदास,
2. नंददास,
3. कृष्णदास,
4. परमानंददास,
5. कुंभनदास,
6. चतुर्मज़दास,
7. छीतस्वामी,
8. गोविंद स्वामी।

अष्टछाप के कवि में चार वल्लभाचार्य के शिष्य थे-

1. कुंभनदास,
2. सूरदास,
3. परमानंददास,
4. कृष्णदास।

अष्टछाप को अष्टसखी और अष्ट विनायक के नाम से भी जाना जाता है। परंतु काल, क्रमानुसार प्रथम पांच कवियों का विवेचन निम्नानुसार है-

1. कुंम्भनदास (1468-1583 ई०)

कुंभनदास अष्टछाप के कवियों में, सबसे वरिष्ठ, कवि थे। इन्होंने सबसे पहले 1492 ई० में वल्लभाचार्य से पुष्टिमार्ग की दीक्षा ली थी। इनका कंठ मधुर था इसीलिए वल्लभाचार्य ने इन्हें मंदिर में कीर्तन का कार्य सौंपा था। इनकी गायन की प्रशंसा सुनकर अकबर ने इन्हें फतेहपुर सीकरी बुलाया था जहां इन्होंने बिना इच्छा के निम्नलिखित पद सुनाया था -

"संतन को कहा सीकरी सो काम?

आवत मुंख पहनियाँ टूटी, बिसरि गयो हरि नाम"

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कुंभनदास के बारे में लिखा है- "ये पूरे विरक्त होकर धन, मान मर्यादा की इच्छा से कोसो दूर रहते थे।"

कुंम्भनदास ब्रज में गोवर्धन पर्वत से कुछ दूर 'जमुनावतौ' नामक गांव में रहा करते थे। आप कृषि कर्म से जीविकोपार्जन करते थे। कुंम्भनदास परम भगवद्भक्त, आदर्श गृहस्थ और महान विरक्त थे। इनके चरित्र की विशिष्ट, अलौकिकता यह थी कि भगवान साक्षात प्रकट होकर उनके साथ सखा भाव से क्रीड़ायें करते थे। श्रीनाथ जी के मन्दिर में कुंम्भनदास नित्य नये पद गाकर सुनाते थे।

श्रीनाथजी के श्रृंगार सम्बन्धी पदों की रचना में उनकी विशेष अभिरुची थी। एक बार वल्लभाचार्य जी ने उनके युगल लीला सम्बन्धी पद से प्रसन्न होकर कहा था कि, "तुम्हें तो निकुंज लीला के रस की अनुभूति हो गयी।" कुंभनदास महाप्रभु की कृपा से गद्गद् होकर बोल उठे कि, "मुझे तो इसी रस की नितांत आवश्यकता है"।

एक बार श्री विठ्ठलनाथ जी उन्हें अपनी द्वारिका यात्रा में साथ ले जाना चाहते थे, उनका विचार था कि वैष्णवों की भेंट से उनकी आर्थिक स्थिति सुधर जायेगी। कुंम्भनदास श्रीनाथजी का वियोग एक पल के लिए भी नहीं सह सकते थे, पर उन्होंने गोसांई जी की आज्ञा का विरोध नहीं किया। वे गोसांई जी के साथ अप्सरा कुण्ड तक ही गये थे कि श्रीनाथ जी के सौंदर्य स्मरण से उनके अंग-अंग सिहर उठे, भगवान की मधुर-मधुर मन्द मुस्कान की ज्योत्सना विरह अन्धकार में थिरक उठी, माधुर्य सम्राट नन्द-नन्दन की विरह वेदना से उनका हृदय घायल हो चला। उन्होंने श्रीनाथ जी के वियोग में एक पद गाया |

"केते दिन जु गए बिनु दैखे

तरून किसोर रसिक नदनंदन, कछुक मुख रेखैं॥

वह सोभा, वह कांति बदन की, कोटिक चंद बिसेखैं।

वह चितवन वह हास मनोहर, वह नटवर जपु भेखैं॥

स्याम सुंदर सँग मिलि खेलन की, आवत

कुंभनदास लाल गिरिधर कितु जीवन जनम अलेखैं"॥

श्री गोसांई जी के हृदय पर उनके इस विरह गीत का बड़ा प्रभाव पड़ा। वे नहीं चाहते थे कुंम्भनदास पल भर के लिए भी श्रीनाथ जी से अलग रहे। कुंम्भनदास को उन्होंने लौटा दिया। श्रीनाथ जी का दर्शन करके कुंम्भनदास स्वस्थ हुए। ऐसी अनन्य भक्ति श्रीनाथ जी के प्रति कुंम्भनदास जी की थी।

कुंम्भनदास के पदों की कुल संख्या जो राग- कल्पद्रुम, राग-रत्नाकर तथा सम्प्रदाय के कीर्तन संग्रहों में मिलते हैं, 500 के लगभग है। कृष्ण लीला से सम्बन्ध प्रसंगों में कुंम्भनदास ने गोचार, छाप भोज, कीरी, राजभोग शयन आदि के पद रचे जो नित्यसेवा से सम्बद्ध हैं। इनके अतिरिक्त प्रभु रूप वर्णन स्वामिनी रूप वर्णन, दानमान, आसक्ति, सुरति, सुरतान्त, खण्डिता, विरह, मुरली रुक्मिणीहरण आदि विषयों से सम्बद्ध श्रृंगार के पद भी हैं। संवत् 1639 विक्रमी में एक सौ तेरह साल की उम्र पर्यन्त आप जीवित रहे।

2. सूरदास (1478-1583 ई०)

महाकवि सूरदास का जन्म 1478 ई० में रुनकता (उत्तर प्रदेश) क्षेत्र में हुआ था। सूरदास के पिता रामदास सारस्वत प्रसिद्ध गायक थे । आगरा के समीप गऊघाट पर इनकी भेंट वल्लभाचार्य से हुई और वे उनके शिष्य बन गये।

सूरदास का ऐतिहासिक उल्लेख 'भक्तमाल और चौरासी वैष्णवन की वार्ता में मिलता है। भक्तमाल में सूरदास की भक्ति, कविता एवं गुणों की प्रशंसा है तथा उनकी अंधता का उल्लेख है।

सूरदास ने ब्रजभाषा में अपने पदों की रचना की तथा सगुण भक्ति काव्य की साधना की, प्रोत्साहन प्रदान किया। सूरदास को वात्सल्य रस का सम्राट माना जाता है। उन्होंने श्रृंगार और शान्त रसों का भी बड़ा मर्मस्पर्शी वर्णन किया है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सूर की कवित्व-शक्ति के बारे में लिखा है- सूरदास जब अपने प्रिय विषय का वर्णन शुरू करते हैं तो मानो अलंकार- शास्त्र हाथ जोड़कर उनके पीछे-पीछे दौड़ा करता है। उपमाओं की बाढ़ आ जाती है, रूपकों की वर्षा होने लगती है। सूरदास जी द्वारा लिखित पांच ग्रन्थ बताए जाते हैं-

1. सूरसागर
2. सूरसारावली
3. साहित्य लहरी
4. नल-दमयंती
5. ब्याहलो

सूरसागर सूरदासजी का प्रधान और महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसके प्रथम नौ अध्याय संक्षिप्त हैं, पर दशम स्कन्ध विस्तृत है। इसमें भक्ति की प्रधानता है। इसके दो प्रसंग कृष्ण की बाल लीला" और भ्रमर गीत सार "अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं।

काव्य भाषा में लोक और शास्त्र के सफल सामंजस्य से सूर ने श्रेष्ठ काव्य का रूपायन किया है। लोक भाषा की निकटता ने सूर को काव्यगत दुरुहता से मुक्त रखा है। इतना ही नहीं उन्होंने ब्रजभाषा को कृष्ण-कथा की गीतात्मक अभिव्यक्ति के योग्य बनाया। उनकी भाषा रागबद्ध है जिसमें केदार, सोरठा, कैफी, सारंग, कान्हरो, जैत श्री, रामकली आदि प्रमुख राग है। आंचलिक और लोक भाषा के शब्दों का प्रयोग सूर के काव्य-भाषा की सबसे बड़ी शक्ति है। कृष्ण की बाल लीला सम्बन्धी उनके प्रसिद्ध पद निम्न है-

"सोभित कर नवनीत लिए।

घुटुरुवनि -चलत रेन-तन - मंडित, मुख दधि लेप किए॥

चारु कपोल, लोल लोचन, गोरोचन - तिलक दिए।

लट - लटकनि मन मत्त मधुप-गन, मादक मधुहिं पिए॥

कठुला - कंठ वज्र केहरि - नख, राजत रुचिर हिए।

धन्य सूर एको पल इहिं सुख, का सत कल्प जिए॥

× × × × ×

मैया मैं नहिं माखन खायो।

ख्याल परैं ये सखा सबै मिलि, मेरैं मुख लपटायो।

देखि तुही छींके पर भाजन, ऊँचें धरि लटकायो।

हो जु कहत नान्हे कर अपनै, मैं कैसें कार पायौ॥

मुख दधि पोंछि बुद्धि इक कीन्हीं, दोना पीठि दुरायौ"।

1581 ई० में सूरदास ने पारसौली (उत्तर प्रदेश) में शरीर त्याग कर मोक्ष प्राप्त किया था।

3. परमानन्द दास (1493 - 1584ई.)

आपका जन्म 1493 ई. में कन्नौज के कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में हुआ था। आपके जन्म के दिन एक धनी व्यक्ति ने इनके पिता को बहुत सा धन भेंट किया था, इत भेंट के फलस्वरूप घर में परमानन्द छा गया था, इसीलिए पिता ने बालक का नाम परमानन्द रखा।

संवत 1582 विक्रमी में परमानन्द दास महा प्रभु जी के साथ ब्रज गये। उन्होंने कन्नौज में महा, प्रभु जी को अपने मुख से "हरि तेरी लीला की सुधि आवै" पद सुनाया। यह पद सुनकर महाप्रभु जी तीन दिन तक मूर्छित रहे। संवत 1602 विक्रमी में गोसांई विठ्ठलनाथ जी ने उनको अष्टछाप में सम्मिलत किया।

अष्टछाप कवियों में परमानंददास विरह-गान में सर्व श्रेष्ठ माने जाते हैं। भावों की सहजता, वर्णन की संक्षिप्तता, संगीत की मधुरता, मार्मिकता एवं भावपूर्ण प्रसंगों की अभिव्यंजना की दृष्टि से उनकी काव्य प्रतिभा अनुपम है। संयोग के परम वर्णन के उपरांत मानजनित, प्रवास जनित आदि सभी प्रकार के विरह वर्णन में कवि की चित्तवृत्ति बहुत रमी है –

"राधा भाग सौं रस रीति बढ़ी।

सादर करि भेंटी नंद नंदन दूने चाऊ चढ़ी॥

वृंदावन में क्रीड़त दोउ, जैसे कुंजर क्रीड़त करनी।

परमानंददास स्वामी मन मोहना ताहु को मन हरनी"॥

माता यशोदा ने जिस तरह कृष्ण को मथुरा न ले जाने के लिए उद्धव की चिरौरी की है वह मर्मस्पर्शी है –

"गोपालै मधुबन जिन लै जाऊ

कहत जसोदा सुन सुफलक सुत हरि मेरे प्राण अधार।

परमानंददास की जीवनि छांड़ि जाहु इक बार" ॥

परमानंददास के दो प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं-

1. ध्रुव चरित्र,

2. दान लीला। इनके अतिरिक्त 'परमानन्द सागर" में इनके पद संग्रहित हैं।

सवंत 1641 विक्रमी में भाद्रपद कृष्ण नवमी को परमानंददास ने गोलोक प्राप्त किया। वे उस समय सुरभी कुण्ड पर ही थे, मध्यान्ह का समय था। गोसांई विठ्ठलनाथ उनके अन्त समय में उपस्थित थे। परमानंददास का मन युगल स्वरूप की माधुरी में सलंग्न था। उन्होंने गोसांई जी के सामने निवेदन किया-

"राधे बैठी तिलक संवारति।

मृगनैनी कुसुमायुध कर धरि नंद सुवन को रूप बिचारति॥

दर्पन हाथ सिंगार बनावति बासुर जुग सम टारति।

अंतर प्रीति स्यामसुंदर सों हरि संग केलि संभारति॥

बासर गत रजनी ब्रज आवत मिलत गोबर्धन प्यारी।

परमानंद स्वामी के संग मुदित भई ब्रजनारी"।

इस प्रकार श्रीराधा-कृष्ण की रूप-सुधा का चिन्तन करते हुऐ उन्होंने अपनी गोलोक यात्रा सम्पन्न की।

4. कृष्णदास: (1495-1580)

अष्टछाप के प्रथम चार कवियों में सबसे छोटे कृष्णदास थे। इनका जन्म सन् 1495 ई. में गुजरात के कुनबी परिवार में हुआ था। पिता के अपराध को उजागर करने के कारण इन्हें पिता द्वारा घर से निकाल दिया और वे भ्रमण करते हुऐ ब्रज आ गये। इन्हीं दिनों श्रीनाथजी का स्वरूप नवीन मंदिर में प्रतिष्ठित किया जाने वाला था। श्रीनाथ जी के दर्शन से वे बहुत प्रभावित हुए। वल्लभाचार्य से भेंट कर उन्होंने 1509 में पुष्टिमार्ग संप्रदाय की दीक्षा ग्रहण की। पहले उन्हें वल्लभाचार्य ने भेंटिया (भेंट उगाहने वाला) के पद पर रखा और फिर उन्हें श्रीनाथ जी के मंदिर के अधिकारी का पद सौंपा। मंदिर पर गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय के बंगाली ब्राह्मणों का प्रभाव बढ़ता देखकर कृष्णदास ने छल और बल का प्रयोग कर उन्हें मंदिर से निकाल दिया। कृष्णदास के चरित्र में अनेक दुर्बलतायें थीं परंतु कृष्णदास को सांप्रदायिक सिद्धांतों का बहुत अच्छा ज्ञान था। उस समय जातीय भेदभाव और छुआछूत अपने चरम पर

थे लेकिन कृष्णदास की अनन्य भक्ति और व्यवहार कुशलता के कारण उनका कथित रूप से शूद्र जाति के होने से भी उनके रुतबे में कही कमी नहीं आई। अपने संप्रदाय में उनका स्थान उस समय अग्रगण्य था और उन्होंने पुष्टिमार्ग के प्रचार में जो सामयिक योग दिया वह कदाचित "अष्टछाप" में अन्य भक्त कवियों की अपेक्षा कहीं अधिक सराहा जाता है।

कृष्णदास ने कृष्ण लीला के अनेक प्रसंगों पर पद रचना की है। उनके संबंध में प्रसिद्ध है कि वह पद रचना में सूरदास के साथ प्रतिस्पर्धा करते थे। कृष्णदास के राग- कल्पद्रुम, "राग - रत्नाकर' और संप्रदाय के कीर्तन संग्रहों में प्राप्त पदों का विषय लगभग वही है जो कुंम्भनदास का है। इनका कविता काल सन् 1550 के आसपास माना जाता है -

1. जुगल मान चरित,
2. भ्रमरगीत,
3. प्रेमतत्व निरुपण।

अतिरिक्त विषयों में चन्द्रावली जी की बधाई, गोकुलनाथ जी की बधाई और गोसाईं जी के हिड़ोरा के पद विशेष उल्लेखनीय हैं।

वृंदावन में नित्य विहार करने वाले राधा-कृष्ण कृष्णदास के उपास्य हैं। ये उपास्य- युगल रसमय, रसिक और नवल किशोर हैं। नाना प्रकार की लीला करना ही इनका उद्देश्य है। राधा कृष्ण की मधुर लीलाओं का गायन करना ही कृष्णदास की उपासना है। राधा- कृष्ण के प्रेम के अतिरिक्त गोपी कृष्ण के प्रेम का भी वर्णन इन्होंने किया है। इसी प्रेम की पूर्वराग के पदों में कृष्ण की रूप माधुरी का सुन्दर वर्णन लक्षित होता है:

"देखि जीऊँ माई नैन रंगीलो,
ले चलि सावी तेरे पाइ लागो जहाँ गोबरधन छैल छबीलो॥
रसमय रसिक रसिकनी मोहन रसमय बचन रसाल रसीलो॥
नवरंग लाल नवल गुन सुन्दर नवरंग भाँति नव नेह नवीलो॥
नाव सिख सींव सुभगता सींवा सहज सुभाइ सुदेस सुहीलो॥
कृष्णदास प्रभु रसिक मुकुट मनि सुभग चरित रिपुदलन हठीलों"॥

5. गोविन्द स्वामी (1505 - 1585)

इनका जन्म 1505 ई० में भरतपुर के निकट 'आतरी' नामक गांव में हुआ। आप एक मात्र अष्टछाप कवि हैं जिनका सबंध राजस्थान से है। गोविन्द स्वामी के 660 पद प्राप्त होते हैं, किंतु पुष्टि संप्रदाय में इनके 252 पद ही प्रचलित हैं। ऐसा उल्लेख मिलता है कि, स्वंय तानसेन इनसे पद गायन की शिक्षा लेने आते थे।

गोविंददास स्वरचित पदों को श्रीनाथ जी के सम्मुख गाया करते थे। भक्ति पक्ष में उन्होंने दैन्य - भाव कभी नहीं स्वीकार किया। गोसांई विठ्ठलनाथ ने उन्हें कवीश्वर की संज्ञा से समलंकृत कर 'अष्टछाप "में सम्मिलित किया था।

गोविंददास की भक्ति साख्य भाव की थी। श्रीनाथ जी साक्षात प्रकट होकर उनके साथ खेला करते थे। बाल लीलाएँ किया करते थे।

गोविंददास ने विभिन्न पदों की रचना की, उनमें से कृष्ण भक्ति का परिचय इस प्रकार से मिलता है-

"श्री वल्लभ चरण लग्यो चित मेरो।
इन बिन और कछु नहीं भावे, इन चरनन को चेरो॥
इन छोड़ और जो ध्यावे सो मूरख घनेरौ।
गोविन्द दास यह निश्चय करि सोहि ज्ञान भलेरो"॥

गोविंददास भैरव राग गायन कर भगवान को रिझाते थे। उनका एक पद बड़ा ही सुंदर है-

"आओ मेरे गोविंद गोकुल चंदा।
भइ बड़ि बार खेलत जमुना तट, बदन दिखाय देहु आनंदा॥
गायन की आवन की बिरियां, दिन मनि किरन होति अति मंदा।
आए तात मात छतियो लगे, गोबिंद प्रभु ब्रज जन सुख कंदा"॥

निष्कर्ष

अंततः कह सकते हैं कि अष्टछाप के समस्त कवियों ने अपने ईष्ट श्रीकृष्ण भगवान के प्रति अनन्य भक्ति का भाव रखा है। उनकी कविताओं में प्रभु की लीलाओं का सूक्ष्म चित्रण देखने को मिलता है। अष्टछाप के समस्त कवियों ने भगवान के स्वरूप का जो विशद वर्णन किया है वह हिंदी काव्य साहित्य में विशिष्ट स्वरूप को धारण करने वाला है। अष्टछाप के सभी कवियों के काव्य में प्रभु के प्रति अन्यतम वात्सल्य, प्रेम और भक्ति के दर्शन होते हैं।

REFERENCES

1. आचार्य रामचंद शुक्ल :- हिन्दी साहित्य का इतिहास
2. डॉ दीनदयाल गुप्त : अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय
3. प्रभुदयाल मित्तल :- अष्ट छाप परिचय
4. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल :- भमरगीत सार
5. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी :- हिन्दी साहित्य की भूमिका
6. डॉ. हरगुलाल :- परमानंददास
7. डॉ. नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास